2

मेरी जन्मदात्री माँ का परिवार और मेरे जन्मदाता पिताजी का विवाह

मेरी माता नवलगढ़ के धनाढ्य सेठ मेघराजजी रींगसिया की पुत्री थी। मेघराजजी को माँ के बाद दो पुत्र भी थे जिनका नाम गजाधरजी और बंशीधरजी था। मेरे नाना का स्वभाव बहुत तेज था। वे अपनी दानशीलता के लिए भी प्रसिद्ध थे। उनके विषय में श्रद्धेय सीताराम जी सेकसरिया (पद्मभूषण) ने मुझे बताया था कि नवलगढ़ में आपके नानाजी के बाद करोड़पति तो और भी बहुत हुए और शायद ही भारत के किसी अन्य गाँव में उतने करोड़पति हुए हों जितने नवलगढ़ में हुए, परंतु आपके नाना में जो विशेषता थी वह दूसरों में नही देखी गयी। अन्य सभी ने अपने भवन बनाने के बाद ही धर्मादे के कामों में हाथ लगाया जब कि आपके नाना ने नवलगढ़ में पहले कूआँ और धर्मशाला का निर्माण करने के बाद ही अपने भवन के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया। यह बात उल्लेखनीय है कि सेकसरियाजी भी नवलगढ़ के ही थे और मेरे नाना को व्यक्तिगत रूप से जानते थे।

ऊपर मैंने नानाजी के जिस तेज स्वभाव का वर्णन किया है उसके दो एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा। जब अपने छोटे भाई अर्थात् मेरे पिताजी का वैवाहिक संबंध मेघराजजी की पुत्री वंसती देवी से तय हो जाने के बाद हमारे घर के मुख्य कर्ता-धर्ता मेरे गोद लेनेवाले पिता रायसाहब सुरजूलालजी ने नवलगढ़ आदमी भेजकर पुछवाया कि बरात में कितने लोग आयें तो मेरे नानाजी ने बदले में एक पुड़िया राई भेजी अर्थात् जितनी आपकी इच्छा हो ले आयें। उस समय तक, हमारा अपने गाँव मंडावा से घनिष्ठ संबंध था और सारे बड़े-बड़े आयोजन वहीं से होते थे। हमारा सारा कबीला वहाँ 'साह' कहलाता था और हम लोगों को **गयाजीवाले साह** कहा जाता था। रायसाहब ने मंडावा में हवेली और नोहरा (शादी-विवाह के अवसरों पर बरात को ठहराने तथा अन्य आयोजनों के लिए विशेष भवन) तो बनवाये ही थे, बाजार के बीच में एक कूआँ भी बनवाया था जिसे **गयाजीवाले साहों का कूआँ** कहा जाता था। मेरे

नानाजी के इस चुनौतीभरे उत्तर को सारे मंडावावालों ने अपने लिए चुनौती समझा। मंडावा के राजघराने ने भी इसको अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया क्योंकि हमारा परिवार 22 पीढ़ियों से राज के कामदार के पद पर रहता आया था। अंत में यह तय किया गया कि सारा गाँव ही बराती के रूप में चले। मंडावा और नवलगढ़ में केवल 18 मील का अंतर है। 18 मील की इस अल्प दूरी का सफर तय करने के लिए ऊटों और बहलियों की संख्या तो यथेष्ट थी, केवल बरातियों के अनुरूप कपड़ों की व्यवस्था करनी थी। इसके लिए गया से रायसाहब ने धोती जोड़े और मलमल के थानों की दो गाँठें भिजवा दीं। बरात में जाने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को एक जोड़ा धोती और छः गज मलमल दो कुर्ते सिलवाने के लिए दे दी गयी। गाँव के दर्जी भी पूरी मुश्तैदी से काम में लग गये। इस प्रकार ठीक समय पर बराती के रूप में सजधजकर नौ सौ से भी ऊपर व्यक्ति नवलगढ़ जा पहुँचे। नवलगढ़वालों को इसकी भनक पहले ही मिल चुकी थी और वहाँ भी सारे गाँव ने बरात के स्वागत को संपूर्ण नवलगढ़ की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। फलतः बड़ी-बड़ी हवेलियाँ बरात के ठहरने के लिए खोल दी गयीं। गाँव में दूर-दूर के 17 स्थानों पर बरातियों को ठहराया गया। उन दिनों 4 दिन से कम बरात नहीं ठहरती थी। भाँति-भाँति के नेग-दस्तूर होते थे। इतनी जगहों पर और दूर-दूर बरातियों के ठहरने के कारण ऊँटों को दौड़ा-दौड़ाकर नेग दस्तूरों की सूचनाएँ देनी पड़ती थीं। बरात की अगवानी के समय नानाजी ने दुलहे के लिए इकन्नियाँ उछालीं तो रायसाहब ने चवन्नियाँ उछलवायीं। इस पर नानाजी ने रुपयों की उछाल शुरु कर दी। बहुत हंगामा मचा। बड़े-बूढ़ों ने समझाया कि कितने ही व्यक्ति रुपये लूटने की धुन में कुचलकर मर जायेंगे। बड़ी मुश्किल से आपस की यह होड़ रोकी गयी। मेरे नानाजी के दंभी स्वभाव का एक किस्सा और भी प्रसिद्ध है जो मैं अपनी माँ के मुँह से सुना करता था। नानाजी की बीमा-एजेंसी थी जिसमें विदेश जानेवाले जहाजों के सामान का बीमा होता था। इससे प्रायः 40-50 हजार रुपयों की वार्षिक आय होती थी जो उन दिनों के लिए बहुत बड़ी रकम थी। इसके अतिरिक्त वे लंबे-लंबे फाटके के सौदे भी करते थे जिनमें हर साल लाखों का वारान्यारा हो जाता था। एक बार इंग्लैंड से जहाजी कंपनी का एक बड़ा अधिकारी नानाजी के पास आकर बोला कि मेघराजजी आपको हम 40-50 हजार रुपये, साल में बीमा के कमीशन के रूप में देते हैं, क्या इससे आपका पेट नहीं भरता जो आप फाटका लड़ाते है। फाटके से कंपनी की बदनामी होती है। मेरे नानाजी ने उत्तर दिया, '40-50 हजार रुपये से तो मेरे घर के नमक-तेल

का खर्च भी पूरा नहीं पड़ता।' साहब बहुत नाराज हुआ। उसी साल उसने नानाजी की कमीशन-एजेंसी समाप्त करवा दी और इस प्रकार उन दिनों की 40-50 हजार रुपयों की बँधी हुई वार्षिक आय उनके हाथ से निकल गयी। मेरे नानाजी की तुलना में मेरी नानी बहुत सीधे और सरल स्वभाव की थी। उसकी मृत्यु 1939-40 में मेरे कालेज में पढ़ने के समय हुई थी इसलिए उसका मुझे भली भाँति स्मरण है। उसके विषय में एक मनोरंजक चर्चा मैने घर में सुनी है। उन दिनों संगीत सुनने के लिए ग्रामोफोन नामक मशीन का प्रयोग होता था जिसमें एक बड़ा भोंपू लगा रहता था। मेरे नानाजी एक ग्रामोफोन बंबई से लाये थे और घर में बजाकर सब को सुना रहे थे। मेरी नानी ने समझा कि इसमें किसी व्यक्ति को बैठा रक्खा है जो गा रहा है। थोड़ी देर सुनने के बाद नानी ने कहा 'अरे, बिचारे को बाहर निकालो, उस का दम घुट रहा होगा।' यह सुनकर सभी लोगों को हँसनें का खूब मसाला मिल गया। नानी से संबंधित एक अन्य घटना है; एक बार दिवाली में लक्ष्मीपूजन के दिन एक काली बिल्ली पूजाघर में आ गयी। दिवाली में काली बिल्ली का आना बहुत शुभ और लक्ष्मी के आगमन का प्रतीक माना जाता है। मेरी नानी ने बिल्ली को भगाते हुए कहा, 'लक्ष्मीमाता! क्या तुझे दूसरा घर नहीं मिलता है जो इसी घर का चक्कर लगाती रहती है। यों ही मेरे पति का दिमाग सातवें आसमान पर रहता है। तू और धरना देगी तो पता नहीं वह क्या करेगा।' मेरी माँ कहा करती थी कि इसीके बाद मेरे नानाजी को फाटके में बहुत बड़ा घाटा लगा था और उनका अधिकांश धन समाप्त हो गया था। वे अपने मित्र हरपालपुर के राजा के निमंत्रण पर एक कारखाना डालने की नीयत से हरपालपुर पहुचे थे परंतु पहुँचने के कुछ दिनों बाद ही एक छोटी-सी बीमारी से उनका देहावसान हो गया था। उस समय मेरे मामा गजाधरजी और बंशीधरजी छोटी उमर के ही थे। कहाँ से क्या लेना-देना है, इसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं था। नानाजी ने पैसा हाथ में आते ही नवलगढ़ में कूआँ और धर्मशाला का निर्माण करने के बाद अपनी हवेली में हाथ लगाया ही था कि उनकी एकाएक मृत्यु हो जाने के कारण वह हवेली पूरी नहीं बनायी जा सकी और आज भी उसी रूप में खड़ी है जैसी वे उसे छोड़ गये थे। वह जिस रूप में आज है, उस रूप में भी वह नानाजी की शान-शौकत का थोड़ा बहुत परिचय तो दे ही देती है। ननिहाल की उसी हवेली में मेरा जन्म हुआ था। मेरे नानाजी की मृत्यु के समय मेरी माँ की उम्र 12-13 वर्ष से अधिक नहीं होगी। उससे छोटे उसके दो भाई थे। बचपन में ही मेरी माँ की, अपनी समवयस्क नवलगढ़ के राजा साहब की पुत्री वन्ना देवी से घनिष्ठता हो गयी थी और दोनों

आपस में धर्मबहनें बन गयी थीं। मेरी माँ बचपन में राजासाहब के गढ़ में खेलने चली जाती थी जहाँ उसे बन्ना देवी की माता का पूरा स्नेह मिलता था। बन्ना देवी का विवाह राजस्थान के किसनगढ़ के राजकुमार से हुआ था जो बाद में वहाँ की राजगद्दी पर बैठा था। बन्नादेवी के पति, किसनगढ़ के राजा का स्वर्गवास जब मैं 6-7 वर्षों का था तभी हो गया था और मुझे अब भी याद है, माँ शोकसूचक काली साड़ी पहने कई दिनों तक रोती रही थी। माँ की मृत्यु के बाद एक बार जब मैं नवलगढ़ गया था तो वन्नादेवी की माँ ने मुझे गढ़ में बुलवा कर बहुत स्नेह दिया था। एक बार जयपुर में बन्ना देवी से, जिसे मैं मौसी के रूप में जानता था, मिलने का अवसर भी मुझे मिला था। उस समय मेरी माँ की मृत्यु हो चुकी थी और बन्ना मौसी मुझे देखकर मेरी माँ की याद में आँसू बहाने लगी थी। मुझे गोद में बिठाकर उसने पुत्र के समान ही प्यार से मेरा मस्तक सहलाया था। उस समय बन्ना देवी के पुत्र किसनगढ़ के तत्कालीन राजा साहब से भी मेरी भेंट हो सकी थी।

मेरी माँ देवी की बड़ी भक्त थी। नवलगढ़ से 20-22 कोस दूर जीन माता का मंदिर प्रसिद्ध है। मेरे जन्म के पश्चात् जब तक उस देवी का चरणामृत नहीं आ गया, माँ ने अन्नजल के रूप में कुछ भी ग्रहण नहीं किया। मेरा जन्म भोर के समय अपनी ननिहाल नवलगढ़ में ही हुआ था। जन्म के बाद तुरत तेज ऊँट पर एक दूत दौड़ाया गया। उसने जीन माता के मंदिर में पहुँचकर देवी का प्रसाद रात के 9 बजे के करीब जब लाकर दिया तभी मेरी माँ ने अन्न-जल तथा प्रसूतिका का निर्दिष्ट भोजन ग्रहण किया था।